सोशल मीडिया के कारण प्रजातंत्र की हिलती नींव

हाल ही में जिस प्रकार से सोशल मीडिया के हस्तक्षेप ने उसे राजनीतिक मीडिया का रूप प्रदान कर दिया है, उससे कनाडा के अर्थशास्त्री और दार्शनिक हेराल्ड इनिस की पुस्तक 'द वायस ऑफ कम्यूनिकेशन' की याद ताज़ा हो जाती है। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रित करने में संचार-तकनीक एवं अन्य माध्यमों की प्रकृति का परीक्षण किया है। उन्होंने प्राचीन साम्राज्यों और उनके पतन को, उस समय प्रचलित संचार तकनीक के माध्यम से समझने का प्रयत्न किया है। संचार के अनेक साधनों के झुकाव में इनिस को स्थान और समय की सबसे बड़ी भूमिका लगती है। इनिस को लगता है कि शिलालेख, पांडुलिपि एवं मौखिक महाकाव्य, दीर्घकाल तक अपने स्थायित्व को बनाकर रख पाते थे।

दूसरी ओर, समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन, स्थान आधारित तकनीक के उदाहरण हैं। वे दूरस्थ स्थानों तक पहुँच सकते हैं। परन्तु उनका अस्तित्व अल्पकालीन होता है। उन्होंने अनेक साम्राज्यों का अध्ययन किया और पाया कि जिन्होंने स्थान और समय में उचित संतुलन बनाकर रखा, वे साम्राज्य ही उच्च सभ्यताओं का निर्माण कर सके।

इनिस के अनुसार इंटरनेट और मोबाईल फोन स्थान आधारित तकनीक हैं। इनकी पहुँच तेज है, और दूर-दूर तक है। परन्तु इनका प्रभाव अल्पकालिक है। फेसबुक और ट्विटर जैसे सोशल मीडिया में स्थान और समय के बीच के संतुलन का अभाव है। अतः ये माध्यम उपभोक्ताओं को अनुकरण करने वालों की एक लंबी सूची देने के साथ-साथ छोटे-मोटे कमेंट आदि से उनके सामाजिक स्थान को आकर्षक और उत्तेजक बना देते हैं। यह आकर्षण उपभोक्ताओं को बांधे रखता है।

सोशल मीडिया की कंपनियों ने विभिन्न सरकारों की प्रकृति के अनुसार एक प्रकार का तालमेल बैठा लिया है। नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने के नाम पर, उन पर रखी जाने वाली निगरानी को विश्व के कई भागों में वैधता प्रदान कर दी गई है। संचार-तकनीक की प्रगति ने प्रशासन के निर्णय के अधिकार को उच्च पायदान पर केन्द्रित कर दिया है। जबकि इनके अनुपालन और कार्यान्वयन को निचले पायदान पर छोड़ दिया है। इस प्रवृत्ति में वृद्धि का अर्थ असंतुलन है। यह असंतुलन संस्थाओं के विनाश का कारण बनता है।

प्रजातंत्र एक ऐसी ही संस्था है। इसका आधार अधिक से अधिक लोगों को भागीदार बनाने का विचार है। चाहे इस व्यापक भागीदारी के चलते निर्णय लेने में देरी हो। सोशल मीडिया के माध्यम से व्यापक भागीदारी का भ्रम फैलाया जा रहा है। परन्तु वास्तव में तो यह अनुकरण मात्र है। लाखों-करोड़ों लोग, जो किसी एक नेता की विचारधारा को पकड़कर, उस पर कमेंट करते दिखाई देते हैं, उन्हें जनहित के निर्णय लेने में भागीदार नहीं समझा जा सकता।

अमेरिका के संचार माध्यमों ने वहाँ के प्रजातंत्र को एक अनजाने क्षेत्र में आसानी से धक्का दे दिया है। वहाँ के मतदाताओं के विचारों को उनके ही द्वारा दी गई सोशल मीडिया पर उनकी जानकारी से मोड़ दिया गया है। यह एक प्रकार की राजनीतिक विक्षिप्तता को प्रमाणित करता है।

हमारे देश में स्थितियाँ भिन्न नहीं हैं। आधार कार्ड के नाम पर जन-सामानय की जानकारियों को एक केन्द्राभिमुख शक्ति की ओर भेजा जा रहा है। केवल आधार को ही जिम्मेदार क्यों ठहराया जाए। इससे पहले भी गरीबों को लाभ पहुँचाने के नाम पर सामान्य जनता की जानकारियों को लिया जाता रहा है। इस माध्यम से चुनावों का रुख मोड़ा जाता रहा है।

इस बात की कोई संभावना नहीं है कि अमेरिकी चुनावों के इस पाठ से फेसबुक और अमेरिका कुछ सीख पाए। आधुनिक संचार प्रणाली में उनका बहुत अधिक निवेश है, और वे किसी भी कीमत पर इसके बहिष्कार या गति को कम करने को स्वीकृति नहीं देंगे।

संस्था के दृष्टिकोण से देखें, तो सोशल मीडिया शुरूआती अवस्था में है। फिर भी इसने वैचारिक क्रोध को धारण कर लिया है। अपने आलोचकों की हत्या करने वाले समूह की ताकत इसमें है। पूरे विश्व में युवाओं का एक ऐसा वर्ग है, जो सोशल मीडिया से लगातार जुड़ा हुआ है। इस वर्ग ने फेसबुक और ट्विटर को ऐसा सांस्कृतिक अधिकार दे दिया है, जैसा कार्पोरेट इतिहास में पहले कभी नहीं दिया गया।

इस सोशल मीडिया की असंतुलित शक्ति बहुत ताकतवर है। अतः हाल ही में फेसबुक और केम्ब्रिज एनालिटिका द्वारा उद्घाटित तथ्यों ने जिस प्रकार से तहलका मचा दिया है, आगे भी ऐसा होता रहेगा। दूसरी ओर, इनका ऐसा उपयोग सत्ता में बैठे लोग करते ही रहेंगे।

'द हिन्दू' में प्रकाशित कृष्ण कुमार के लेख पर आधारित।